विपश्यना

[साधकों का मासिक प्रेरणापत्र]

रजि. नं. १९१५९/७१

पोस्टल रजि. नं. (M) NS (C) 36

वर्ष १० • बम्बई • बुद्धवर्ष २५२४ • माघ पूर्णिमा [शक] • दि. १८-२-१९८१ • अंक ९

स्थूलसे सूक्ष्मताकी ओर

सफल विपश्यी साधक चार सूक्ष्मताओंकी चरमसीम सच्चाइयोंका साक्षात्कार कर लेता है। चार परम सत्यका स्वयं साक्षात्कार कर कृतकृत्य हो जाता है।

पहली सूक्ष्मता है कायाकी। कायानुपश्यना करता हुआ साधक प्रारंभमें कायाके ठोसपनेकी अनुभूति करता है। बार-बारके अभ्याससे स्थूलसे सूक्ष्मताकी ओर बढ़ता है। बींधते हुए तीक्ष्ण चित्तसे ऊपरसे नीचेकी ओर तथा नीचेसे ऊपरकी ओर यात्रा करते-करते स्वतः शरीरका घनत्व नष्ट होता है। फिर इसी तीक्ष्णतासे समग्र शरीर-पिंडको चीरता हुआ केवल-ऊपरी-ऊपरी सतही स्तर तक ही नहीं, बल्कि भीतर तककी घनसंज्ञा नष्ट कर लेता है। रूपकलाप याने शरीरगत परमाणुओंकी सूक्ष्म सच्चाई तक जा पहुँचता है। जो भौतिक जगतका अंतिम सत्य है। शरीरका एक-एक कण खुल जाता है। कहीं भी संकलन, संघटन, संयोजन, संश्लेषण नहीं रह जाता। जैसे कोई बालूका गीला पिंड सूख जाय। कण-कणको बांधे रखनेवाली संयोजनरूपी नमी दूर हो जाय। घनीभूत पिंड विघटित हो जाय, बिखर जाय। शरीरके बाहर-भीतर कहीं भी कोई स्थिर, शाश्वत, ध्रुव, अचल, ठोस पदार्थ है, ऐसा भ्रम नहीं रह जाय। यही रूप-स्कंधकी याने भौतिकरूपकी अंतिम सच्चाई तक पहुँचना है। यही रूपका सूक्ष्मतम साक्षात्कार है जिसमें कि भासमान पकड़ सत्य परमसत्यके रूपमें अनुभूत होने लगता है।

दूसरी सूक्ष्मता है -- वेदना - स्कंधकी। विपश्यी साधक वेदनानुपश्यना करता हुआ देखता है कि प्रारंभमें समस्त शरीरपर अधिकतर स्थूल स्थूल संवेदनाएँ महसूस होती है। जैसे कि घनीभूत दबाव दुखाव, तनाव, खिंचाव, भारीपन अथवा मूर्छा, अर्धमूर्छा आदि-आदि। परन्तु शांत और समताभरे चित्तसे इन स्थूल संवेदनाओंका साक्षीकरण करते-करते इनका स्वतः भेदन होने लगता है। शनैः शनैः शरीरके भीतर-बाहर सर्वत्र स्थूल संवेदनाएँ क्षीण होने लगती है। उनका विघटन-विश्लेषण होने लगता है और एक अवस्था आती है जबकि शरीर पर कहीं भी मूर्छा या अर्ध मूर्छा नहीं रह जाती। कहीं कोई सघन संवेदना नहीं रह जाती। सर्वत्र तरंगे उदय-व्यय ही उदय-व्यय की अनुभूति होने लगती है। अनासक्त-भावसे इसीका दर्शन करते-करते संवेदनाकी यह उदय-व्यय अनुभूति भी अधिक सूक्ष्मताकी ओर प्रयाण करने लगती है और सूक्ष्मतम अवस्था तक पहुँचती है। तब उदय और व्ययकी अलग-अलग अनुभूति भी बंद हो जाती है। उदय होते ही व्यय होता है। बीचकी स्थिति ही समाप्त हो जाती है। यह परमाणुओंसे चित्तके स्पर्श होते ही वेदनाकी उत्पत्तिकी सूक्ष्मतम सच्चाई है जो तत्क्षण व्ययमें बदलती है। इस अवस्थामें सारा प्रपंच इस तीव्रगतिसे प्रवाहमान प्रतीत होता है कि सर्वत्र भंग ही भंगका बोध होता है। जैसे बहती हुई नदी बालूके तटवर्ती कगारको काट दे और वह बालूका ढेर भरभराकर गिर पड़े। कण-कण बिखर जाय। यों सारे शरीर-स्कंध पर जो संवेदना महसूस होती है। वह अत्यंत तीव्रगतिसे भंग होती हुई, बिखरती हुई ही महसूस होती है। कहीं ठोसपना नहीं, स्थूलता नहीं। कहीं अटकाव नहीं, व्यवधान नहीं, रुकावट नहीं, बाधा नहीं। सर्वत्र धाराप्रवाह ही अनुभूति होती है। यह भंग बोध ही संवेदनाकी सूक्ष्मतम अवस्थाका साक्षीकरण है जो संवेदनाओंको सामिष नहीं बनने देता याने उनके प्रति राग-द्वेष नहीं जगने देता; जो संवेदनाओंको निरामिष बनाए रखता है याने उनके प्रति अनासक्तभाव पुष्ट करता है।

धम्म वाणी

रुप सोखुम्मतं ञत्वा, वेदनानं च संभवं।
सञ्ञा यतो समुदेति, अत्थं गच्छति यत्थ च॥
सङ्खारे परतो ञत्वा, दुक्खतो नो च अत्ततो।
स वे सम्मद्दसो भिक्खू, संतो संतिपदे रतो॥
धारेति अंतिमं देहं, जित्वा मारं सवाहिनिं॥

अंगुत्तर निकाय-४/२/६,

रुपकलापोंकी सूक्ष्मताको जानकर, संवेदनाओंकी उत्पत्तिको जानकर, संज्ञाकी उत्पति एवं निरोधको जानकर, सभी संस्कारोंसे तादात्म्य दूरकर, उन्हें दुःख स्वरुप समझकर और उनके प्रति अनात्मभाव रखकर जो शांत सम्यकदर्शी साधक भिक्षु परम शांतिपद निर्वाण रत होता है वह सेना सहित मारको जीतकर अंतिम देहधारी बन जाता है। उसके लिए अगला जन्म नही होता।

इसी प्रकार विपश्यी साधक चित्तानुपश्यना करता हुआ, चित्तके उस खंडके क्रियाकलापको देखता है जिसे संज्ञा कहते है। जिसका काम मूल्यांकन करना है। पूर्व अनुभूतियों और यादगारोंके बलपर, पूर्व संस्कारोंके रंगीन चश्मे चढ़ाए हुए चित्तका यह संज्ञा-स्कंध प्रत्येक अनुभूतिको अच्छा या बुरा, प्रिय या अप्रिय, सुखद या दुखद आदि-आदि मूल्य देते रहता है। साधक देखता है कि यह संज्ञा-स्कंध कितना प्रबल है। प्रत्येक अनुभूति अच्छे-बुरे मूल्यांकनसे जुड़ी ही रहती है। जिस अनुभूतिको अच्छी मान लेता है उसे लगातार कितने अरसे तक अच्छी माने जाता है। जिसे बुरी मान लेता है उसे लगातार कितने अरसे तक बुरी ही माने जाता है। तारतम्य टूटता ही नहीं। संज्ञाकी निरंतरता बनी ही रहती है परिणामतः संज्ञा-स्कंध घनीभूत होते जाता है। विपश्यनाके बलपर साक्षीकरणका अभ्यास करते-करते साधक देखने लगता है कि किस प्रकार घनीभूत संज्ञाके कारण ही प्रतिक्रियाओंसे अभिभूत चित्त राग-द्वेषके नए संस्कार बनाता है और दूषित हो उठता है। और कैसे जब संज्ञाकी निरंतरता टूटती है तो सघनता दुर्बल होती है। स्थूल से सूक्ष्म होती हुई संज्ञाकी जकड़ कम होती है तो प्रतिक्रियाओंका प्रभाव भी स्वतः कम होने लगता है।

इसी प्रकार चित्तानुपश्यनाके साथ-साथ साधक धम्मानुपश्यना भी करने लगता है। रूपकलापों याने परमाणुओंके धर्म-स्वभावको देखता है। वेदनाओंके धर्म-स्वभावको देखता है। और देखता है संज्ञा और उसके परिणामस्वरूप उत्पन्न हो रहे संस्कारोंके धर्म-स्वभावको भी। कैसे शरीर पर होनेवाली किसी संवेदनाके अनुभवका संज्ञा जब अच्छा, प्रिय, सुखद आदि मूल्यांकन कर देती है तो तुरंत रागात्मक संस्कार जागने लगते हैं और घनीभूत होने लगते हैं उसका बुरा, दुखद अप्रिय मूल्यांकन कर देती है तो द्वेषात्मक संस्कार उभरने लगते हैं और घनीभूत होने लगते हैं। इन घनीभूत संस्कारोंका तूफान ही भावावेश बनकर समस्त चित्त-स्कंध पर छा जाता है और चित्तधाराको व्याकुल-व्यथित कर देता है। साधक विपश्यनाके आधार पर समझता है कि ये संस्कार कितने दुःखप्रद हैं। विपश्यना द्वारा ही इसके दुःखद होनेका कारण भी समझमें आने लगता हैं। इन संस्कारोंके प्रति कितना तादात्म्य स्थापित कर लिया है--आत्मभाव, आत्मीय भाव; "मैं" का भाव, 'मेरे' का भाव। यही आसक्ति पैदा करता है। परिणामतः दुःख पैदा होता है। विपश्यी साधकको देखते-देखते स्पष्ट होने लगता है की यह आत्म-आत्मीय भाव, मैं-मेरेका भाव रूप-स्कंध या शरीर-स्कंधके प्रति याने घनीभूत परमाणुओंके पुंजके प्रति कितना गहन हो उठा है। फलतः दुःख भी उतना ही गहन हो उठा है। विपश्यना द्वारा सत्यका साक्षात्कार करते-करते यह स्पष्ट होने लगता है कि जिस प्रकार रूप-स्कंध याने परमाणु-पुंज उदय-व्यय स्वभावके हैं, अनित्यधर्मा हैं, वैसे ही वेदना भी, वैसे ही संज्ञा भी और वैसे ही संस्कार भी। यह अनित्य--बोध जितना--जितना सबल होते जाता है, संस्कारोंके प्रति 'मैं-मेरे' का भाव उतना-उतना दुर्बल होते जाता है, आत्मभाव दुर्बल होता है तो अनात्मभाव स्वतः पुष्ट होता है। देखते-देखते आसक्ति क्षीण होती है। अनासक्ति पुष्ट होती है। दुःखका कारण दूर होता है। दुःख दूर होता है।

अनात्मभाव पुष्ट होता है तो ही संज्ञाका घनत्व क्षीण होता है। संस्कारका घनत्व क्षीण है। दर्शन "केवल दर्शन" बन जाता है। ज्ञान "केवल ज्ञान" बन जाता है। भोक्ता और कर्ताकी भ्रांति तो दूर होती ही है; समय पाकर द्रष्टा और ज्ञाताकी भ्रांति भी दूर हो जाती है। "देख रहा हूँ" के स्थान पर "देखा जा रहा है" रह जाता है। "जान रहा हूँ" के स्थान पर "जाना जा रहा है" रह जाता है। दर्शक, दर्शन और दृश्य तीनों एकाकार होकर "केवल दर्शन" रह जाता है। ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय तीनों एकाकार होकर "केवल ज्ञान" रह जाता है। यही सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञानकी चरम अवस्था है। ऐसी अवस्थामें ही संज्ञा-निरोध होता है। साधक आध्यात्मकी गहनतम अवस्था प्राप्त करता है। केवल ज्ञान, केवल दर्शनसे "कैवल्य" की उपलब्धि करता है। "केवली" हो जाता है। इंद्रियातीत परमपद "निर्वाण" में यथेच्छ रत रहनेमें अभ्यस्थ हो जाता है। उन्मुक्त हो जाता है। तब वह स्वयं जान लेता है कि अब मेरा पुनर्जन्म नहीं है। क्योंकि उस अवस्थामें पहुँचकर पुनर्जन्मके सारे भव-संस्कार क्षीण होकर क्षय हो जाते हैं। मनुष्य-जीवन सफल-सार्थक हो जाता है। संस्कार और संज्ञाके उदयव्ययकी अनुभूतिसे लेकर उनके निरोध तककी यह यात्रा ही इन दोनोंकी चरम सूक्ष्मतम अवस्था है। विपश्यी साधक यों रूप, वेदना, संज्ञा, और संस्कार-स्कंधोंकी उन सूक्ष्मतम परम सच्चाइयोंकी अवस्थाओंका साक्षात्कार कर लेता है, जिनके आगे इन स्कंधोंके क्षेत्रमें कुछ और सूक्ष्मतर नहीं रह जाता। और तदनन्तर इनसे परे उस परम सत्य निर्वाणका साक्षात्कार करता है जो कि इंद्रियातीत है, नाम-रूपातीत है। साधक प्रत्यक्षानुभूति द्वारा भलीभांत जान लेता है कि स्थूल भासमान सच्चाइयोंका भेदनकर सूक्ष्मतम तक पहुँचनेकी यही विधा है, साधना है, शक्ति है। इससे बढ़कर अन्य कोई विद्या, साधना, शक्ति नहीं। अतः इसे पाकर वह और कुछ पानेकी अपेक्षा नहीं रखता।

अन्तर्मुखी होकर विपश्यना साधना द्वारा स्थूलसे सूक्ष्मकी ओर यात्रा करनेवाले साधकके लिए मार्गमें अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं। अनेक बार भौतिक रूप और चित्तका घनत्व नष्ट होकर सूक्ष्म प्रवाहकी स्थिति प्राप्त होनेके बावजूद किसी सुसुप्त कर्म-संस्कारकी उदीर्णा होती है तो शरीर-स्कंध पर पुनः उस संस्कारके अनुरूप कोई स्थूल घनीभूत संवेदना प्रकट करती है, कभी मूर्छा-अर्धमूर्छा प्रकट करती है। साधक धीरजके साथ फिर उन्हें भासमान स्थूल प्रकट सत्य समझकर साक्षीभावसे देखता है तो देर-सबेर उनका भी भेदन होता है—पूर्व संस्कारोंकी निर्जरा होती है, उनका क्षय होता है। पुनः सूक्ष्म धाराप्रवाहकी अनुभूति होने लगती है। यों जब तक अधोगतिकी ओर ले जानेवाले सुसुप्त कर्म-संस्कारोंका संग्रह पूर्णतया समाप्त नहीं हो जाता, तब तक बीच-बीचमें स्थूलता उभरती ही रहती है। समझदार साधक इन पूर्व संस्कारजन्य संवेदनाओंके प्रति उपेक्षाका अभ्यास करता है। यह संस्कार-उपेक्षाकी यात्रा किसीके लिए लंबी किसीके लिए ओछी होती है। निर्भर करता है—पूर्व-संग्रह कितना है। निर्भर करता है—संस्कार उपेक्षाका काम कितनी समझदारीपूर्वक किया जा रहा है।

ऐसी अवस्थामें कोई कच्चा साधक राजमार्ग छोड़कर किसी गलत भूल-भुलैयामें पड़ जाता है। पूर्व संस्कारजन्य स्थूल भासमान

सत्य प्रकट हो तो उसके वशकी बात नहीं। उनका साक्षीभावसे सामना करना ही है। परन्तु जब साधक बावलेपनमें स्वयं कल्पनाजनित रूप, रंग, रोशनी, शब्द आदिका कृत्रिम आलंबन उत्पन्न करके उन पर ध्यान देने लगता है तो एक भासमान सत्यसे दूसरे बनावटी भासमान सत्यके उधेड़बुनमें पड़ जाता है। सूक्ष्मताकी ओर जानेका रास्ता रुक जाता है। राजमार्ग छूट जाता है। किसी अंधी गलीमें जा अटकता है। मुक्ति दूर हो जाती है। साधक समझदार होता है तो इस धोखेसे अपने आपको बचाता है।

इस साढ़े तीन हाथकी कायाके भीतर समझदारीपूर्वक स्थूल सत्यसे सूक्ष्मताकी ओर प्रयाण और सूक्ष्मतम सत्य तककी पहुँच सबके लिए अत्यंत कल्याणकारी है। साधको! विपश्यनाके सतत अभ्यास द्वारा सूक्ष्मसे सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतरसे सूक्ष्मतमकी ओर गतिशील बन रहना सीखें, किसी भुलावेमें भटके नहीं और इस प्रकार सही मानेमें अपना मंगल-कल्याण साधें! स्वस्ति-मुक्ति साधें!

कल्याण मित्र,
स. ना. गो.

स्वस्थ परंपरा

सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्टके प्रथम अध्यक्ष एवं ट्रस्टी श्री श्रीरामजी तापड़िया एवं प्रथम मानद मंत्री श्री मधु काबरासे अपने पदोंसे त्यागपत्र देकर जनसेवाके इच्छुक अन्य लोगोंको सेवाका अवसर देनेके लिए जिस स्वस्थ परंपराका सुत्रपात किया था, उस परंपराको कायम रखते हुए ट्रस्टके दूसरे अध्यक्ष एवं ट्रस्टी श्री. दयानंदजी अडूकिया एवं एक अन्य ट्रस्टी श्री. राधेश्यामजी गोयन्काने भी अपने त्यागपत्र प्रस्तुत किए। इन्हें स्वीकृत कर नए ट्रस्टियोंकी नियुक्ति कर ली गई।

ये दोनोंही ट्रस्टके संस्थापक ट्रस्टियोंमें से हैं जिनकी प्रभूत सेवाएँ चिरकाल तक स्मरणीय रहेंगी। विशेषकर श्री. दयानंद अडूकियाका विपश्यनाके प्रति सेवाकार्य भारतमें विपश्यनाके पुनर्जागरणके इतिहासमें ऐतिहासिक महत्व रखता है। भारतका पहला शिविर बम्बईकी एक धर्मशालामें लगा था जिसमें इनके पुत्र श्री. विजयकुमारने सम्मिलित होकर लाभ उठाया तो इन्होंने व्यवस्थाका भार अपने जिम्मे लिया। इसी प्रकार बम्बईमें जितने भी शिविर लगे उन सबकी व्यवस्थाका भार इन्हींके सिर पर होता और परिवारके सदस्य तथा अन्य परिचित मित्र शिविरोंमें सम्मिलित होकर लाभान्वित होते। २२ वें शिविरमें जब यह स्वयं सम्मिलित होकर विपश्यनाके प्रत्यक्ष लाभोंकी स्वानुभूति की तो इनका सेवाभाव अपरिमित हो उठा। इस कल्याणकारी विद्यासे अधिकाधिक लोगोंका मंगल हो, इस भावनासे अपने काम-धंधोंकी परवाह किए बिना अधिकाधिक शिविर लगवाने और उनकी व्यवस्थाका भार अपने ऊपर लेनेके लिए कृतसंकल्प रहे।

उन दिनों शिविर-व्यवस्थाका काम बड़ा कठिन था। विपश्यना सिखानेका कोई केन्द्र नहीं था, इसलिए शिविरके लिए स्थानकी खोज बर्तन--भांडे व रसोइयों-नौकरोंकी व्यवस्था, राशनके सामान, रहने--सोने आदिके लिए गद्दे, आसन आदि छोटे-बड़े सभी सामान इकट्ठे करने तथा शिविर--समापनके पश्चात् इन्हें यथास्थान पहुँचाना, शिविरार्थियों की बुकिंग आदिसे लेकर उनकी वापसीकी रेल--टिकटें बुक करवानी तथा शिविरके दौरान आवश्यकतानुसार चिकित्सा--व्यवस्था आदि अनेक प्रकारकी सेवाएँ जैसे बीसियों काम हुआ करते थे जिनको कोई व्यक्ति अपने काम-धंधेका पूरी तरह स्वार्थ-बलिदान किए बिना कदापि नहीं पूरा कर सकता था। आपने यह सारा काम अत्यंत मनोयोग एवं धर्मके प्रति श्रद्धा तथा साधकोंके प्रति निःस्वार्थभावसे ही किया।

इगतपुरीके आश्रमकी स्थापना होने पर भी उसकी सभी आवश्यकताओंकी पूर्ती एवं उनकी देख रेखका भार अपने ही सिर रखे और बड़ी कुशलतापूर्वक उसे निभाया। यह सब उन्होंने किसी पद--प्रतिष्ठा अथवा यश--लाभके लोभसे नहीं, वरन् अत्यंत सेवा-भावसे किया। अब इस पदसे मुक्त होनेके बावजूद भी उनका यह सेवाभाव पूर्ववत् कायम है। उनकी इस शुद्ध धर्मचेतनाके असीम पुण्यसे उन्हें शारीरिक स्वास्थ्य-सुख एवं मानसिक शांति मिले और उत्तरोत्तर धर्ममें परिपक्व होते हुए वे अपना सही मंगल साध सकें, यही शुभ--कामना है।

मानद मंत्री,
सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट.

साधकों के उद्गार

बाराचकियासे नर्वदा तोदीने लिखा है, "१६ अप्रैल की विपश्यना पत्रिका मिली। बहुत दिनोंसे स्वयं-शिविर लगानेकी बात मनमें थी। बस विपश्यना पढतेही मुझे धर्मका बल मिला और ५ दिनका छोटा शिविर आरंभ कर दिया। शिविरमें मुझे अच्छी शांति मिली। आप व माँका वाणी--सहयोग मुझे समय--समय पर मिलता रहा। विशेष गर्मीके बावजूद भी मुझमें शांति बनी रही। धारा-प्रवाह तरंगे ही तरंगे, लहरियाँ ही लहरियाँ - तटस्थभाव, साक्षीभाव, समता-भाव, द्रष्टाभाव बना रहा। सुखद-दुखद दोनोंके प्रति मन समतामें स्थित रहा। गुरुवर मुझे वर्तमानमें जीना आ गया। माँको मेरा प्रणाम कहेंगे। माँ सयामाको भी।

विशेष सूचना

प्रसन्नताकी बात है कि आगामी **२ से २४ मार्च ८१ तक** (२२ दिन) पू. गुरूजी व माताजी सुवर्णदेश बर्मामें सयाजी ऊ बा खिन द्वारा स्थापित ऐतिहासिक आश्रम "अन्तर्राष्ट्रीय साधना केन्द्र" में रहेंगे। जो पुराने साधक नियमित विपश्यना साधना करते हों और इसके प्रति अनन्यभाव रखते हों; वे चाहें तो अपनी साधना अधिक पुष्ट करने के लिए इस आश्रमकी धर्ममय तरंगों एवं पू. गुरूजीके सानिध्यका लाभ ले सकते हैं। ऐसे लोग अपना स्थान सुरक्षित करवानेके लिए कृपया--

व्यवस्थापक, विपश्यना विश्व विद्यापीठ,
धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२ ४०३ (नासिक)
से संपर्क करें।

आगामी शिविर

शिविर क्रमांक : १९३ काठमांडू (आनंद कुटी दायक सभा, नेपाल) दि. २५-३-८१ से ५-४-८१ तक (हिन्दी)
संपर्क : श्री मणिहर्ष ज्योति, ज्योति भवन, पो. बॉक्स नं. १३३, काठमांडू (नेपाल) फोन नं : ११४९०, ११२९० तार : हिमालआयरन
शिविर क्रमांक : १९४ इगतपुरी (वि. वि. वि. धम्मगिरि) दि- १०-५-८१ से २१-५-८१ तक (हिन्दी)
संपर्क : व्यवस्थापक, विपश्यना विश्व विद्यापीठ, धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२४०३ (नासिक, महाराष्ट्र) फोन नं. ७६

शिविर क्रमांक : १९५ जयपुर (विपश्यना केन्द्र, धम्मथली, गल्ताजी रोड) दि. २५-५-८१ से ५-६-८१ तक (हिन्दी)
संपर्क : श्री श्यामसुन्दर मूंदडा, जी-१/ए, अशोक मार्ग, सी-स्कीम, जयपुर-३०२ ००१ (राज.) फोन-६३३२२/६५४१४ कार्या. तार-डॉली

सूचना : १) कृपया साधना शिविर में शामिल होने से पूर्व शिविर-व्यवस्थापक के पास अपना नाम रजिस्टर करा लें। **किसी कारणवश शिविर में सम्मिलित न हो सकते हों तो कृपया पर्याप्त समय रहते सूचित करें ताकि किसी अन्य प्रत्याशी को स्वीकृति दी जा सके।** २) अंग्रेजी शिविर में हिन्दी-प्रवचन सुनने लिए हिन्दी टेप की सुविधा उपलब्ध रहती है।
३) शिविरों के नियम कड़े होते हैं। उनका कड़ाई से पालन कर सकें तो ही भाग लेना चाहिए।

तार -- प्रेमकेबल फोन ४०३५७/४४५४७
मेसर्स दि प्रीमियर केबल कम्पनी
१४/१५ एफ, कनॉट प्लेस, नई--दिल्ली ११० ००१
की मंगल कामनाओं सहित

↓

दूहा धरम रा

ज्यूं ज्यूं मन पर सघन हो, छावै भावावेस।
त्यूं सच पर पड़दो पड़ै, जागै अन्तर क्लेस॥
ज्यूं ज्यूं टूटै सघनता, बिखरै भावावेस।
सांच उजागर हों उठै, दुक्ख रवै ना क्लेस॥
फाटै पड़दो मोह को, माया हुवै विलीन।
परम सत्य परकट हुवै, हुवै अविद्या खीण॥
छूटै मिथ्या धारणा, भ्रम निरमूलित होय।
काया चित कै खेल मँह, नित्य नहीं कछु होय॥
परम सत्य तो एक है, परगट हुया अनेक।
भ्रम का बंधन टूटसी, अन्तर आंख्या देख॥
ई काया मँह ही बस्या, सभी लोक परलोक।
आँख मींच कर देखतां, होसी सहज असोक॥

दोहे धर्म के

जब जब मनमें प्रकट हो, "मैं-मेरे" का मान।
आत्मभाव की जकड़ में, व्याकुल होवे प्राण॥
आत्मभाव की मूर्छा, बंधनकारी होय।
अहंभाव सारा मिटे, तो ही मंगल होय॥
मान, मोह, माया मिटे, कपट रहे ना क्रोध।
जब अनात्म का बोध हो, होवे दुक्ख निरोध॥
करली झूटी कल्पना, माया से भरपूर।
मिथ्या दर्शन ही मिला, सम्यक् दर्शन दूर॥
सम्यक् दर्शन ज्ञान से, सत्य प्रकटता जाय।
सत्य देखते देखते, परम सत्य दिख जाय॥
स्थूल स्थूल को बींधते, सूक्ष्म सूक्ष्म को देख।
परम सूक्ष्म दिख जाय तो, रहे न दुख की रेख॥

सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट के लिए मुद्रक, प्रकाशक एवं संपादक : रामप्रताप यादव, ग्रीन हाऊस, २ री मंजिल, ग्रीन स्ट्रीट, फोर्ट, बम्बई २३. टेलीफोन : ३१३५१०. • मुद्रण स्थान : अक्षरचित्र मुद्रणालय, सातपुर, नासिक ४२२ ००७. टेलिफोन ८८२५१ •
पत्रिका में विज्ञापन दर : आधा पृष्ठ रू. ५००/-, चौथाई पृष्ठ रू. २५० /- • वार्षिक शुल्क रू. ५/-, आजीवन शुल्क रू. ५१/-

---

विपश्यना"

पो. रजि. नं. (M) NS (C) 36

License No. NS 18
Licensed to post without pre-payment

प्रेषक :
सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट
विपश्यना विश्व विद्यापीठ
धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२ ४०३.
(नासिक, महाराष्ट्र)